इस पहल को इंडिया फ़ाउंडेशन ऑफ दी आर्ट्स के प्रोजेक्ट 560 के तहत समर्थन मिला है।

बेवरू

मई 2020
बैंगलोर
5 रूपए

प्यार, इज़्ज़त, संघर्ष

घरेलू मज़दूर, सेक्स वर्कर, सफाई कर्मचारी और कपड़ा फ़ैक्टरी की यूनियन और संगठन के सहयोग के साथ

VOL. 5

प्रवासी मज़दूर की आवाज़ में

"700 मज़दूर? पक्का? इतने ढ़ेर सारे?" पिछले कुछ हफ़्तों में लॉकडाउन के दौरान कई सरकारी अधिकारी का यही कहना था। शहर में प्रवासी मज़दूरों की इतनी संख्या देख कर सरकार, यूनियन और आम जनता सभी चौंक गए। लॉकडाउन की वजह से कई प्रवासी मज़दूर बिना तन्खवाह और काम के शहर में अटक गए हैं। इसके चलते श्रम विभाग, बी.बी.एम.पी. और पुलिस लगातार कोशिश कर रही है मज़दूरों तक खाना और राशन पहुंचाने की जो कहीं पर कामयाब हुए हैं, कहीं पर नहीं।

बैंगलोर मेट्रो, शहर का एक बड़ा प्रोजेक्ट है। इसमें 9000 से ज़्यादा प्रवासी मज़दूर काम करते हैं। मरा संस्था द्वारा बनायी गयी एक रिपोर्ट में सामने आया है कि मज़दूर किस तरह की स्तिथि में रहते हैं और काम करते हैं। बी.एम.आर.सी.एल. को जब संपर्क किया गया तो उन्होंने इन मज़दूरों के बारे में किसी भी तरह की जानकारी देने से मना कर दिया। वायरस की वजह से पिछले दस साल में मज़दूरों के साथ हो रहा शोषण अब दिखायी दे रहा है।

"ऐसा नहीं है कि सरकार हम पर कोई एहसान कर रही है। बिना काम करे वो हमे एक रुपया ना दे। जो काम हमने किया है हम सिर्फ उसी का पैसा मांग रहे हैं। यहाँ हम सिर्फ काम करने आये हैं और कुछ नहीं।" इस बीच शहर की कई कंस्ट्रक्शन साइट पर यही कहानी देखने को मिल रही है। जबसे लॉकडाउन शुरू हुआ है मज़दूर अपने ठेकेदार या मालिक से बात करने की कोशिश कर रहे हैं, या तो उनका फोन बंद है या फिर वो झूठे वादे करके टाल रहे हैं। कुछ ने राशन दिया है जिसका पैसा मज़दूरों को पता है कि उनकी तनख्वाह से ही काटा जायेगा।

"हमे मेहनत का काम करने की आदत है। ईमानदारी से कमाई हुई पूरी तनख्वाह मिलना हमारा हक़ है। दिन के दो बार के खाने के लिए लोगों के सामने हाथ फैलते रहना हमे पसंद नहीं।"

जो मज़दूर रोज़ की देहाड़ी पर काम करते हैं उनकी हालत और भी ख़राब है। एक मज़दूर जो महादेवपुरा में एक नाले के पास से कूड़ा उठाने का काम करता है उसने बताया, "मेरे पास अब सिर्फ 2000 रूपए ही बाकि हैं, बुरे समय के लिए बचा कर रखे हैं। मुझे बीमारी हो गयी तो?" महादेवपुरा इलाका शहर के आई.टी. कॉरिडोर का हिस्सा है। सरकार की जवाबदेही के अभाव में, मज़दूर संस्थाओं और कई संगठन की मदद लेने के लिए मजबूर हैं।और कोई रास्ता नहीं दिखता। वैसे तो खाना और राशन पहुंचाने की ज़िम्मेदारी बी.बी.एम.पी. और ट्रेड यूनियन के साथ मिलकर श्रम विभाग की बनती है। लेकिन ज़मीनी तौर पर, ये लोग प्रवासी मजदूरों की ज़रूरतें पूरी नहीं कर पा रहे हैं।

शहर में सुविधाएँ और योजनाएं हासिल करने के लिए सभी प्रवासी मज़दूरों के पास बैंक अकाउंट, राशन कार्ड या बाकि कागज़ नहीं होते। ज़्यादातर प्रवासी मज़दूर किसी यूनियन का भी हिस्सा नहीं हैं।

सदियों से निजीकरण, राजनैतिक दबाव, माध्यम वर्ग और मीडिया की आपराधिक लापरवाही से प्रवासी मज़दूर अपने हक़ की लड़ाई अकेले ही लड़ते आ रहे हैं। ज़्यादातर प्रवासी मज़दूर अपने काम में, चलने-फिरने में, रहने में और फैसले लेने में आज़ादी चाहते हैं। लेकिन अधिकतर कंपनी असंगठित मज़दूरों को काम पर रख रही हैं। आज कॉन्ट्रैक्ट लेबर का ही राज चल रहा है, जहाँ मज़दूरों की आवाज़ दबा कर रखना और भी आसान है। गांव में बेरोज़गारी और कृषि की मुसीबतों के कारण मज़दूर काम की तलाश में शहर आता है। उसकी गरिमा, हक़ और योजनाओं के बारे में जानकारी होने के बावजूद वो शहर में काम की खोज में उलझ कर इनके बारे में भूल जाता है। यूनियन भी प्रवासी मज़दूरों को संगठित करने में ज़्यादा सफल नहीं रही है क्योंकि मज़दूर किसी दिन एक शहर में है तो किसी दिन दूसरे शहर में। उसका काम ठेकेदार के इशारे पर ही चलता है।

क्षेत्र, जाति और धर्म को लेकर तनाव और गहरा होता जा रहा है जिससे राहत के काम पर भी असर पड़ा है। जैसे कि अगर लोग स्थानीय भाषा नहीं बोल पाते तो उनके साथ राशन-पानी बाटने में भेदभाव हो रहा है। एक इलाके के विधायक ने अपने वोट देने वाले लोगों में ही राशन बांटा, जबकि कुछ मज़दूरों को 'मुफ्त' में मिलने वाले राशन के लिए पैसे देने पड़े। बैंगलोर में मज़दूरों का एक बड़ा तबका मुसलमान है। जिस तरह न्यूज़ चैनल पर दिखाते हैं और राहत के काम से भी साफ़ है, इस वक़्त लोगों का ध्यान इस महामारी पर कम बल्कि हिंसा और नफरत को बढ़ावा देने की तरफ ज़्यादा है। "इस कोरोना वायरस से हमे कुछ नहीं होगा। इससे बड़ा वायरस तो जाति और धर्म है। उस वायरस को फ़ैलाने से रोकने के लिए कोई कुछ क्यों नहीं करता? वो सबसे ज़्यादा खतरनाक है," एक मज़दूर ने कहा जो दिल्ली में हुए दंगों के बाद से स्तिथि को देखता आ रहा है। वायरस के चलते जो मज़दूर अनुसूचित जाति से हैं, उनके साथ छुआछूत और भेदभाव और बढ़ गया है। "वो खाना बाटने हमारी तरफ नहीं आते, दूसरी गली में जाते हैं जहाँ उनकी जाति के लोग रहते हैं।"

"हमारे कमरे बहुत छोटे हैं। 15-20 लोग साथ रहते हैं। धूप में टिन गर्म हो जाता है। ऐसा लगता है अंदर आग लग

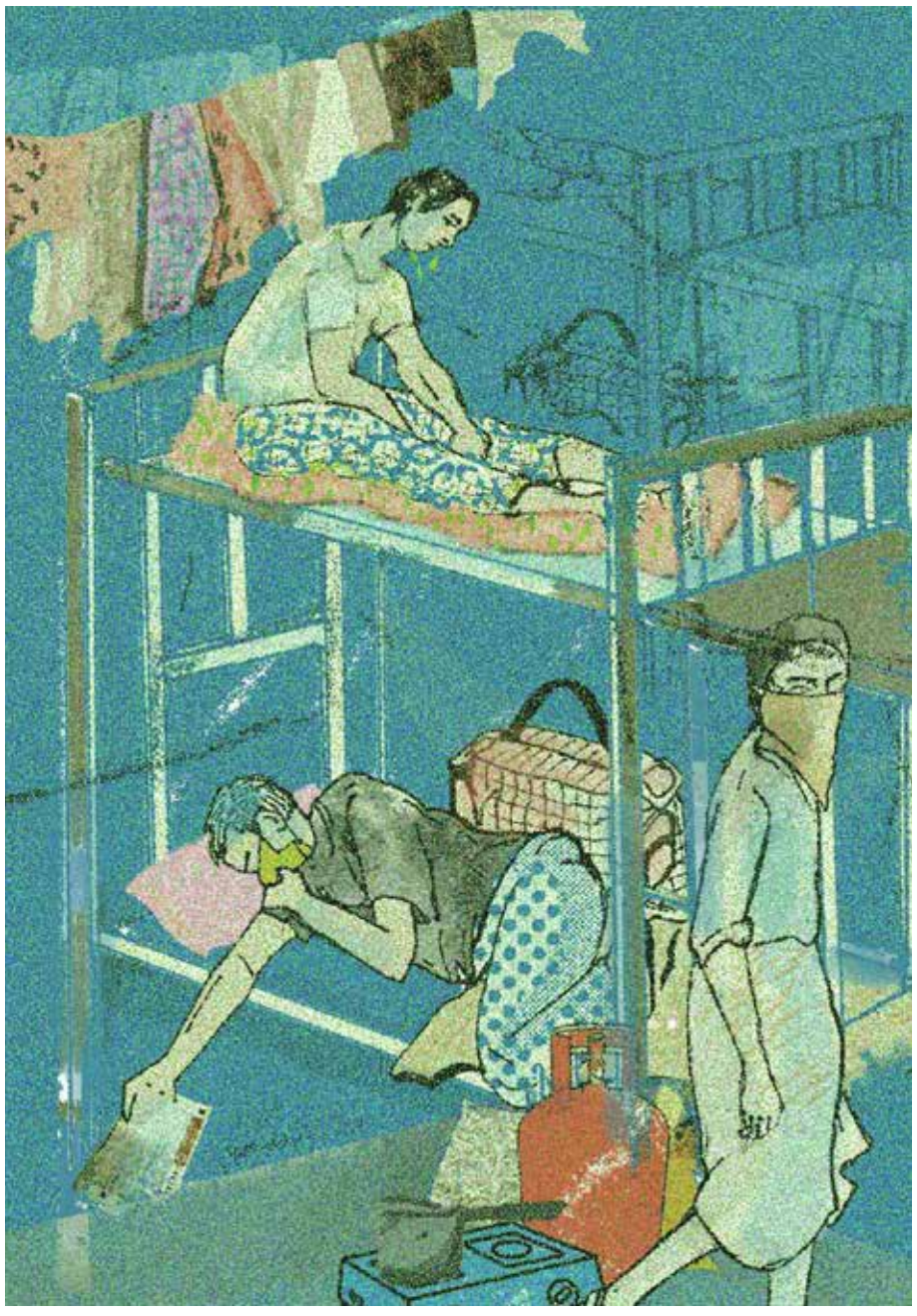

जाएगी।" ऐसे में 'सोशल डिस्टेंसिंग' के लिए जगह कहाँ है। जहाँ नल में पानी ही नहीं आता वहां प्रधान मंत्री की अपील को कैसे मानेगें? मज़दूर दो वक़्त की रोटी के लिए संघर्ष कर रहा है, ऐसे में मास्क, दस्ताने, सैनिटाइज़र - इन सबका क्या महत्व है? सरकार की तरफ से सेहत के लिए जो निर्देश आते हैं वो इस वक़्त भददे मज़ाक की तरह लगते हैं। सरकार ने मज़दूरों को एक बार फिर अनदेखा किया है। उनकी तरफ से कुछ राहत, विश्वास या सांत्वना नहीं मिली है। मीडिया की नज़र में मज़दूर सिर्फ एक बेचारा और लाचार इंसान की तरह दिखता है जो बिना सोचे घर की तरफ पैदल निकल पड़ा है या फिर रेलवे स्टेशन पर भीड़ बढ़ाने के लिए ज़िम्मेदार है। पर मज़दूरों को सिर्फ इस नज़रिये से देखना उनसे उनकी गरिमा छीन लेता है। और फिर जिस कारण से ये समस्याएं पैदा हुई हैं उनके बारे में तो कोई खबर नहीं है। बल्कि सरकार और प्रशासन तो अपने आधे-अधूरे राहत के काम के लिए तारीफ बटोर रहे हैं। मज़दूरों के साथ एक बार फिर घिनोना खेल खेला जा रहा है।

*बेवरू के इस अंक में लॉकडाउन के दौरान बैंगलोर में प्रवासी मज़दूरों के अनुभव और आवाज़ को सामने लाने की कोशिश है। इस साल 1 मई को अंतर्राष्ट्रीय श्रम दिवस पर एक भयानक दृश्य देखने को मिला जहाँ सरकार और प्रशासन की आपराधिक लापरवाही और मज़दूरों के प्रति अंधेपन की वजह से सैंकड़ों मज़दूर घर वापिस जाने की कोशिश में भूखे-प्यासे सड़क पर पाए गए। इस अंक में हमारी कोशिश है कि मज़दूरों की आर्थिक और सामाजिक परिस्तिथि के साथ उनकी मानसिक परस्तिथि को भी समझा जाये। सदियों से मज़दूरों को हाशिये पर रखने के बाद उन्हें अब अचानक से पहचानने का ढोंग ना किया जाये। हमारा इरादा है कि बेवरू का ये अंक अपने पढ़ने वालों के लिए अलग सवाल खड़े करेगा और साथ ही याद दिलाएगा कि हम भी इस समस्या के लिए ज़िम्मेदार हैं।

मैंने मेट्रो को खड़ा किया है

मैं इस शहर में 2010 में आया था। थोड़े समय एम.जी. रोड पर था, फिर मैजेस्टिक, फिर मैसूर रोड, आर.आर. नगर और अब बनेरघट्टा। ऐसा लगता है बैंगलोर की पूरी मेट्रो मैंने ही अपने हाथों से बनायी है। मैं मेट्रो के बारे में सब कुछ जनता हूँ। अगर मैं शहर छोड़ कर चला गया तो मेट्रो का काम खत्म कौन करेगा?

कल रात सपने में देखा कि हम सारे मज़दूर शहर छोड़ कर चले गए और वापिस नहीं आये। शहर में रहने वाले लोगों ने सब काम छोड़ कर मेट्रो बनाना शुरू कर दिया। हमने जो काम शुरू किया था वो उन्हें पूरा करना होगा क्योंकि शहर में बाकि सभी साधन बंद हो चुके हैं। हम सब मज़दूर अपने गांव में बैठकर इसका वीडियो व्हाट्सप्प पर देखकर ज़ोर-ज़ोर से हँस रहे थे।

मैंने अपनी आधी ज़िंदगी शहरों में बितायी है। मैं घर से भाग गया था, मेरा बाप अच्छा आदमी नहीं था, मैं भी अकड़ वाला था। तब से घर वापिस कभी नहीं गया। मैंने सड़क पर ही ज़िंदगी के बारे में सीखा है। मुझे अपना काम बहुत पसंद है, मेरे से अच्छा वेल्डर ढूँढने से भी नहीं मिलेगा। वैसे ढूंढने पर भी मैं किसी के हाथ आसानी से नहीं आने वाला। मैंने कई शहरों में मेट्रो का काम किया है, हैदराबाद, बैंगलोर, दिल्ली, मुझे हर शहर का एहसास है। अभी मेरे आस-पास सभी घर जाना चाहते हैं, कुछ डरे हुए हैं, कुछ काम ना करके थक गए हैं, सब यही कह रहे हैं- मुझे घर जाना है, ट्रेन कब चलेगी? 15 साल बाद, मुझे घर का सपना आया। गांव का तालाब जिसमे मैं डुबकी मरता था, मीना बाज़ार की रंग-बिरंगी लाइट, घर के पास वाली दरगाह, बबलू के दुकान की लिट्टी-चोखे की महक और मेरी रिहाना।

मैं बैंगलोर 6 महीने पहले आया था। यहाँ का मौसम मुझे पसंद है। मगर कभी-कभी आलसी भी बना देता है। मैं यहाँ जब आया था तब मेट्रो की पर्पल लाइन बन रही थी। ब्यप्पनहल्ली स्टेशन लगभग पूरा बन गया था, मेरा काम था स्टेशन के पास का ओवरब्रिज बनाना। आपने देखा है वो ब्रिज? कितना मज़बूत और शानदार दिखता है ना। मुझे अपना वो काम बहुत पसंद है। पर ठेकेदार ने मेरे 6 महीने के पैसे नहीं दिए। घर पर कुछ भी नहीं भेज

पाया। मेरी माँ रोज़ फ़ोन करके पूछती थी कि पैसे क्यों नहीं भेजे। मैं शर्मिंदा था। सिर्फ शराब से ही कुछ राहत मिलती थी। मुझे रोने में आसानी होती थी। अगले दिन सुबह उठ कर काम पर जाने में मदद करती थी। एक रात मैं कंस्ट्रक्शन साइट से दूसरी तरफ चलने लगा। मैं गुस्से में था। जैसे मुझ पर कोई भूत सवार हो। लगभग 4 बजे थे। सड़क पर एक नारियल बेचने वाला था, मैंने उसे एक तरफ धक्का दिया, उसका चाकू उठाया और सीधा चलता गया। एक दरवाज़े पर जाकर खटखटाया, वो दरवाज़ा मैंने पहले कभी नहीं देखा था। उसने दरवाज़ा खोला, मैंने उसका गला काट दिया। वो मेरा ठेकेदार था। जब मैं सोकर उठा तो पसीने में तर था। अगले ही दिन मैंने शहर छोड़ दिया इस वादे के साथ कि फिर कभी यहाँ वापिस नहीं आऊंगा।

मैं क्रेन ऑपरेटर हूँ। बैंगलोर में जबसे मेट्रो का काम शुरू हुआ है तब से मैं यहीं हूँ।अब तो कन्नड़ा भी बोल लेता हूँ। मेट्रो मेरे बिना बन ही नहीं पाती, और इस शहर को मेरे से बेहतर क्रेन ऑपरेटर मिल ही नहीं सकता। क्या है ना, मैं चीज़ें ऊपर से देखता हूँ, सब कुछ बहुत अलग दिखता है। मुझे लेबर कॉलोनी में रहना पसंद नहीं। मुझे अकेले रहना था। मुझे अपने हिसाब से फुल्का-सब्ज़ी बनाना अच्छा लगता है। इसलिए मैंने एक कमरा किराये पर लिया, इसका खर्चा में अपनी तनख़्वाह से ही करता हूँ। मुश्किल था इतने पैसों में खर्चा चलाना। इतने सालों से काम करने के बाद भी मेरी तन्खाव्ह दूसरों मज़दूरों जितनी ही है। मुश्किल से कुछ बचता है। साल में एक बार मैं घर जाता था। इतने साल दूर रहने के बाद मेरी बीवी मुझ पर शक करने लगी है। उसे लगता है कि मैं किसी और के साथ हूँ। कुछ महीने के लिए घर पर पैसे नहीं भेज पाया ना। एक दिन उसने फ़ोन पर बोला, घर मत आना और बच्चों से भी नहीं मिलना। ये सुनकर मैं हैरान था, लगा कि ये सब सिर्फ एक सपना है। दो साल पहले मैं गांव गया था पर गांव के लोगों के पीटकर भगा दिया। मैं बैंगलोर वापिस आ गया। अब भी यहाँ क्रेन ऑपरेटर का ही काम करता हूँ। अकेले रहता हूँ। कभी घर आना, मुझसे मिलने।

ये लेख उन चार मज़दूरों से हुई बातचीत पर आधारित है जो नम्मा मेट्रो को बनाने के काम में पिछले एक दशक से लगे हुए हैं। मरा संस्था ने बैंगलोर मेट्रो में काम कर रहे मज़दूरों के रहने और काम करने की परिस्तिथियों के बारे में 6 अप्रैल को श्रम विभाग को एक रिपोर्ट जमा की थी। वो रिपोर्ट 11 अप्रैल को जनता के सामने रखी गयी जिससे कि सरकार पर सख्त कदम उठाने के लिए दबाव बन सके।

हम घर के अंदर कैसे बैठ सकते हैं?

सड़क पर ही हमारा धंधा चलता है

अगर किसी धंधे में छूना ज़रूरी हो तो मास्क, सैनिटाइज़र, दस्ताने जैसी चीज़ों की क्या जगह रह जाती है।

“न्यूज़ देखते हैं तो डर लगता है। सेहत से जुड़ी सभी चेतावनी सोशल डिस्टेंसिंग की बात करती हैं, किसी के नज़दीक नहीं जाना है, ऐसे में हम काम कैसे करेंगे?”

साधना महिला संघ सड़क पर काम करने वाले सेक्स वर्कर का एक समूह है। इसके सदस्यों को इस बात की ज़्यादा चिंता है कि लॉकडाउन के बाद क्या होगा। उन्हें याद है 80 के दशक में जब एच.आई.वी. फैला था तो उन्हें किन मुश्किलों का सामना करना पड़ा। बीमारी से ज़्यादा तो बीमारी के कलंक से जुड़ी बदनामी का डर रह जाता है। एच.आई.वी. के समय सेक्स वर्कर को ही एक बीमारी मानने लगे थे। उस कलंक से बाहर निकलने के लिए बहुत साल लग गए। उनको डर है कि इस वायरस के बाद फिर समाज से वही लड़ाई दुबारा लड़नी होगी।

सेक्स वर्कर के लॉकडाउन बहुत मुश्किल समय रहा है जिन्हे सड़क पर धंधा छोड़कर घर पर रहने के लिए मजबूर होना पड़ा। इसके अलावा उनके पार्टनर भी उनसे ढंग से बात नहीं करते, इस वक़्त उनका साथ नहीं दे रहे हैं। “अगर मैं फ़ोन पर उसको मदद करने के लिए बोलती हूँ तो कहता है कि उसको नहीं पता कि इंटरनेट से पैसे कैसे भेजते हैं। बुरा लगता है ये सुनकर। पहले तो वो अगर मेरी छुट्टी वाले दिन भी बुलाता था तो मैं चली जाती थी। बोलता था मैं उसकी बीवी की तरह हूँ। जब उसे बुखार था, तब भी मैं उसके साथ सोयी थी। अब बोलता है, ये वायरस खतरनाक है, हो सकता है मेरी वजह से उसे बीमारी लग जाये। मुझसे अब मिलना नहीं चाहता, बीवी तो नहीं हूँ उसकी। ये तो बड़ा आसान है ना, जब चाहे मिलो, जब चाहे ना मिलो?” समूह के एक सदस्य ने बताया।

वायरस के चलते अस्पतालों में भीड़ लगी है। दूसरी बिमारियों के लिए लोगों को अस्पताल जाने में और दवाई मिलने में मुश्किल हो रही है। इसमें वो सेक्स वर्कर भी शामिल हैं जिनका ऐ.आर.टी. का इलाज चल रहा है। लॉकडाउन की वजह से वो अपने हफ्ते के इलाज के लिए नहीं जा पा रही हैं। तीन हफ़्तों तक महिला और बाल कल्याण विभाग पर दबाव डालने के बाद बाहर जाकर दवाई लाने के लिए इजाज़त मिली है। बाकि मज़दूरों की तरह सेक्स वर्कर को भी कई मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। कमाई का कोई ज़रिया नहीं है और राशन के पैसे दुगने होते जा रहे हैं। अगर वो राशन खरीदने घर से बाहर निकलती हैं तो पुलिस उन्हें वापिस घर भेज देती है।

“मुझे सबसे ज़्यादा बाहर घूमना अच्छा लगता है। मेरा काम ही सड़क पर है। मैं जो पैसे कमाती हूँ उसी से घर चलता है। बच्चों के स्कूल की फीस जाती है।”

“जबसे ये वायरस आया है, मैं घर के अंदर बंद हूँ। पैसे कमाने का कोई तरीका नहीं है। दूसरों पर निर्भर हो गयी हूँ। ऐसा लग रहा है मेरी आज़ादी चली गयी है।”

साधना संघ की कई सदस्य आने वाले समय के लिए खुद को तैयार कर रही हैं। कुछ औरतों ने छोटे-मोटे काम शुरू कर दिए हैं जैसे कि घर पर आचार, पापड़ बनाना और पड़ोस में बेचना। पता नहीं सड़क पर फिर कब धंधा शुरू होगा। “मैं किसको बताऊँ अपनी हालत के बारे में? मेरी बहू ही मुझे नहीं समझ सकती। अपने बच्चों को अपने काम के बारे में नहीं बता सकती। क्या बताऊँ उन्हें कि मुझे धंधा करने की ज़रुरत क्यों है जब न्यूज़ में दूर रहने के लिए बोलते रहते हैं?”

वायरस के बाद हमारे प्यार के, नज़दीकियों के, चाहत के रिश्ते किस तरह बदलेंगे? इस दौरन मज़दूरों को जो आर्थिक, मानसिक और भावनात्मक नुकसान हुआ है उसका जवाब कौन देगा? वायरस के बाद की दुनिया कैसी होगी?

*ये लेख साधना महिला संघ के सदस्यों के अनुभवों पर आधारित है। ये समूह बैंगलोर में सड़क पर काम कर रही सेक्स वर्कर के अधिकारों के लिए काम करता है।

भूख से ज़्यादा खतरनाक और क्या हो सकता है?

लॉकडाउन शुरू होने के बाद शहर के लोग घरों के अंदर बंद हो गए, उसे काम पर आने से मना कर दिया। सड़कें, गलियाँ अचानक शांत हो गयी हैं। कुत्ते और चिड़ियों की आवाज़ों के अलावा कुछ सुनायी नहीं देता। उसके और उसके दोस्तों की रोज़ाना की ज़िंदगी अब बदल चुकी है। जो समय रोज़ कचरे से प्लास्टिक बीनने में, मेटल और टिन ढूंढने में, भोजपुरी गाने सुनते हुए या हंसते हुए निकलता था, वो समय आज चुप-चाप खड़ा है।

गर्मी के दिन हैं। एक वायरस के बारे में कुछ झूटी-सच्ची ख़बरें फ़ैल रही हैं। कह रहे हैं कि सबको घरों या कमरे के अंदर ही बंद रहना होगा नहीं तो बीमारी का खतरा है। मास्क, दस्ताने, सैनिटाइज़र और 'सोशल डिस्टैन्सिंग' जैसे शब्दों के बारे में बातें हो रही हैं। छोटी सी जगह में मेटल और प्लास्टिक के टुकड़े, अल्युमीनियम और कागज़ के बीच और गांव के 60 लोगों के साथ रहने के बाद उसे सिर्फ नज़दीक रहना आता है।

उसकी कॉलोनी में 500 लोग रहते हैं, ये शहर के मशहूर आईटी कॉरिडोर में आती है जिसे आईटीपीएल (इंटरनेशनल टेक पार्क) भी कहते हैं। इसके चलते ये कॉलोनी चारों तरफ से ऊँची इमारतों में शीशे के बने ऑफिस और बड़े-बड़े गेट वाले काम्प्लेक्स से घिरी हुई है। वो कम से कम जगह लेने की कोशिश करते हैं। वो चुप-चाप काम करते हैं। एक दिन में वो 12-14 घंटे की शिफ्ट करते हैं। समय ही पैसा है। हिसाब से चलना पड़ता है। एक शहर को ज़िंदा रखने के लिए मज़दूरों का रहना ज़रूरी है: टाइल्स, प्लास्टिक, कूड़ा, कंक्रीट, ईंट, साफ़ करना, बीनना, खाना बनाना, इमारत बनाना। ठेकेदार के पास उसकी दो महीने की तनख्वाह बाकी है। ये कानून के खिलाफ है, ऐसा उसे बताया गया है।

कचरे से ढूंढा हुआ मेटल गर्मी की धूप में चमक रहा है। समय अब सोते हुए, ताश खेलते हुए और दिन में सपने देखते हुए ही निकलता है। फ़ोन पर उसकी बीवी ने बताया कि उन्हें बोला गया है जल्द-से-जल्द फसल काटने के लिए। पर शहर में तो सामान से भरे हुए ट्रक जाने नहीं दे रहे। उसने बताया कि सोयाबीन रखे-रखे खराब हो रहा है। जबकि यहाँ शहर में उसके पास आदमी भूख से बैचैन होते जा रहे हैं। छोटे-मोटे झगड़े भी हो चुके हैं। उसने ठेकेदार को फ़ोन लगाने की कोशिश करी। उसका फ़ोन हमेशा बंद ही होता है। हर वक़्त के खाने के साथ, उसके बचाये हुए पैसे ख़तम होते जा रहे हैं। कुछ पैसे तो अलग रखने ही पड़ेंगे, कल अगर तबियत ख़राब हो गयी तो क्या करेंगे? आटे का पैसा भी दुगना हो गया है। उसे न्यूज़ देखी थी। वायरस की वजह से मरनेवालों की संख्या अब 2000 से ज़्यादा हो चुकी है। वो लेट जाता है पर नींद नहीं आती।

खाने का सामान बाटने के लिए एक और सर्वे करना है। वो कॉलोनी में सब लोगों की एक लिस्ट बनाता है- नाम, आधार कार्ड नंबर, क्या काम करते हैं, मालिक का नाम और तनख्वाह। वो सोचता है सरकार ये सारी जानकारी के साथ क्या करेगी? क्या पता कल उन्ही के खिलाफ इस्तेमाल करे तो? उसका मन करता है सर्वे का कागज़ फाड़ कर फेंक दे। पर वो खुद को संभालता है और लिस्ट बनाता रहता है।

उसके गोडाउन के चारों तरफ जो ऊँचे अपार्टमेंट हैं वो एकदम सीधे, चुप-चाप खड़े हैं। उसके पड़ोस की एक औरत जो वहां खाना बनाने का काम करती है जब अपनी तन्खाव्ह मांगने गयी तो चौकीदार ने अंदर नहीं जाने दिया। अपार्टमेंट में रहने वाले लोगों ने उसपर शक किया। उसे ये सब सुनकर बिलकुल भी हैरानी नहीं हुई, "हम जैसे लोगों के लिए 'सोशल डिस्टैन्सिंग' कौनसी नयी बात है?"

अब जो कुछ मिल रहा है उसी में खुश रहना पड़ता है। ट्रक भर के राशन आना शुरू हुआ है। हर बार जब राशन का ट्रक आता है तो लोगों की बेचैनी और बढ़ जाती है। क्योंकि पता नहीं कि अगली बार राशन कब मिले। लोगों में एक शक और नाराज़गी पैदा हो गयी है, "वो क्यों तीन पैकेट ज़्यादा लेकर जा रहा है?" उसके पास खड़ा एक आदमी धूप और गर्मी की वजह से भीड़ के बीच बेहोश हो गया है। उसको जल्दी से वहां से हटा दिया गया ताकि बाकि लोग राशन ले सकें। उसको शायद अब किसी और दिन ही राशन मिलेगा। उस रात उसके बाकि साथियों ने उसे खाना खिलाया। रात को बस्ती में एक सन्नाटा था, सब चुप-चाप खाना खाकर सो गए।

उसने न्यूज़ पर देखा कि मज़दूरों के लिए योजनाएं बनाई गयी हैं। उसको लगता है कि ये वायरस कोई बड़ी साज़िश का नतीजा है केवल मज़दूरों को परेशान करने के लिए। शाम को 5 बजे पके हुए खानेकी थैलियों से भरा हुआ एक ऑटो आके रुकता है। वो दोपहर का खाना बांटने आये हैं। दिनभर में सिर्फ एक थैली खाना। वो थैली खोलता है, खाना खराब हो चुका है। भूख से ज़्यादा खतरनाक और क्या हो सकता है? वो थैली फेंक देता है। वो और उसके दोस्त बीड़ी पीने के लिए सड़क तक जाते हैं। यूँ खाली खड़े शहर की खाली सड़कों को देखना कुछ अजीब है। बीड़ी एक हाथ से दूसरे हाथ में जाती रहती है और वो देखते रहते हैं खाली गलियां और दुकान के बंद शटर। एक आदमी ऊपर बालकनी से मास्क पहने हुए चिल्लाता है, दूर-दूर खड़े रहो। वो नीचे खड़ा पैर से बीड़ी बुझा देता है। उस रात उसने सपना देखा कि सरकार का पसंदीदा हथियार अब बम की जगह वायरस हो गया है।

बेवरू (पसीना) समर्पित है बैंगलोर के मज़दूरों की आवाज़, नज़रिया और अनुभवों के लिए। ये अखबार खासकर असंगठित मज़दूरों के लिए है। अगर आप कविता, गाना या मज़दूरों के बारे में लिखना चाहते हैं तो हमारे साथ बाँटे। आपको ये अखबार कैसा लगा हमे ज़रूर बताइये। कोई सुझाव या सवाल है तो वो भी हमे बतायें। और जानकारी के लिए आप हमे लिख सकते हैं bevarupaseena@gmail.com या फोन कर सकते हैं- 63666646052

बेवरू का ये खास अंक वायरस की वजह से लॉकडाउन के समय प्रवासी मज़दूरों के अनुभव पर केंद्रित है। सभी लेख मरा टीम के द्वारा मज़दूरों के साथ चर्चा करके लिखे गए हैं। मरा एक मीडिया और आर्ट्स कलेक्टिव है जो बैंगलोर में 2008 में शुरू हुआ। ये कलेक्टिव बोलने और अभिव्यक्ति की आज़ादी की ओर काम करता है जहां खासकर हाशिये की आवाज़ों को सामने रखने की कोशिश है। हम अलग-अलग तरह के संघर्ष और बाहर छूटे हुए लोग और उनके अनुभवों के बारे में बात करके एक विकासशील शहर की कल्पना को चुनौती देते हैं।

अंग्रेज़ी लेख: अंगारिका गुहा, अनुषी अग्रवाल, एकता एम, निहाल पस्सनहा

हिन्दी अनुवाद: अनुषी अग्रवाल

कन्नड़ा अनुवाद: महिमा गौड़ा, बसवाचार

लेआउट और चित्र: तारा एम थॉमस

संपर्क करें: एकता एम (9880755875)
अंगारिका जी (9880159484)

सपनों का शहर

"दिन भर इधर से उधर, उधर से इधर घूमता रहता हूँ। बाहर नहीं जा सकते तो एक-दो घंटे रोड पर बैठ जाओ या फिर छत पर टहल लो। और क्या कर सकते हैं? दुआ ही करते हैं कि ये लॉकडाउन जल्दी ख़त्म हो और हम घर जा सकें। अब यहाँ क्या बचा है?"

शहर में कंक्रीट के ढांचे हर जगह फैले हुए हैं। ये ढांचे बैंगलोर की बढ़ती हुई आबादी के घरों की बुनियाद हैं। लेकिन ये सिर्फ किसी के आधे बने हुए घर नहीं है। यहाँ मज़दूर रहते हैं। सीमेंट और ईंट के इस खुले ढांचे में। यहाँ दिवार, खिड़की, टॉयलेट कुछ नहीं है। पानी बोरवेल से आता है। इस आधे बने घर में हर जगह इमारत बनाने का खुला माल फैला हुआ है- ईंट, सीमेंट, प्लास्टर। जहाँ ये इमारत को सुन्दर बनाते हैं वहां धूल भी पैदा करते हैं। बिलबोर्ड में दिखने वाली बिल्डिंग को बनने में अभी बहुत वक़्त लगेगा। लेकिन तब तक ये उनका घर है।

हर इमारत की साइट का एक अलग मालिक, अलग कांट्रेक्टर है। मज़दूर दूर-दूर से आते हैं - बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा। कांट्रेक्टर के बड़े-बड़े वादों पर भरोसा कर वो शहर आते हैं एक बेहतर ज़िन्दगी, काम और पैसे की तलाश में। उन्हें यहाँ की भाषा नहीं मालूम। उनका नाम किसी रिकॉर्ड में दर्ज नहीं है नाही वो किसी यूनियन का हिस्सा हैं। ये मज़दूर इस शहर को नहीं पहचानते, ये शहर उन्हें नहीं पहचानता।

"हम 10 लोग रोज़ की तरह अपने कमरे से सुबह 8 बजे काम पर निकले लेकिन बाहर कोई बस नहीं थी, थोड़ा आगे गए तो पुलिसवाले मारने लगे। वापिस आकर ठेकेदार को फ़ोन किया तो पता चला कि 21 दिन का लॉकडाउन है, सब काम बंद।"

बिना काम के ये शहर घर जैसा नहीं लगता। वो पैसेवालों के बगल में ही रहते हैं। वो सुबह उन्हें दौड़ करते हुए या शाम को पड़ोस में चलते हुए देखते हैं। किसी ने उनसे नहीं पूछा कि वो कहाँ से हैं। कांट्रेक्टर हर इमारत के साथ बदलता है। मज़दूर को रोज़ या फिर हर हफ्ते पैसा मिलता है। थोड़े पैसे खुद के खर्च के लिए रख कर बाकि घर भेज देते हैं। गांव में घर उनकी कमाई से ही चलता है।

"इस लॉकडाउन में बाहर ज़्यादा दूर तक नहीं जा सकते। ये पैसेवाले लोग हमको शक की नज़र से देखते हैं। बस बिल्डिंग के अंदर और आस-पास ही थोड़ा घूम सकते हैं। वैसे भी हम कौन हैं, यहाँ सिर्फ काम करने ही आये हैं।" दिनभर की मेहनत के बाद वो अपने हाथों से खाना बनाते हैं। खाने की खुशबू घर की याद दिलाती है। आजकल दिन में एक वक़्त ही खाना खाते हैं। ठेकेदार ने कहा है, "थोड़ा एडजस्ट करो।"

"खाली बैठ कर शरीर में दर्द होता है। लूडो खेल लो, मोबाइल पर वीडियो देख लो। पर हर वक़्त चिंता लगी रहती है। आगे क्या होगा, घर कैसे जाऊंगा, कमरे का किराया कैसे दूंगा, कुछ समझ नहीं आ रहा।"

अगर बाहर सड़क पर कहीं दिखे तो पुलिस जेल में डालने की धमकी देती है। सरकार से उन्होंने अपनी सुरक्षा या घर वापिस जाने के इंतज़ाम के बारे में कुछ नहीं सुना है। मालिक के साथ एक मज़दूर का सीधा संबंध कभी नहीं होता। ठेकेदार हमेशा बीच में रहता है। मज़दूर को जो मिलता है उस में ही खुश रहना पड़ता है। ना ज़्यादा, ना कम। जवाब देने के लिए कोई नहीं है, सवाल उठाने के लिए कोई नहीं है।

"अचानक इस लॉकडाउन के बाद यहाँ बहुत अकेला लगता है। शहर में किसी को नहीं पता कि हम यहाँ हैं। किससे मदद माँगे? घर पर अब ज़्यादा फ़ोन नहीं करता, सब परेशान होते हैं। फ़ोन पर रोते हैं। उनको बोलता हूँ कि मैं यहाँ एकदम अच्छा हूँ। क्या कहूं उनसे?"

पूरे दिन अब फ़ोन पर गाने सुनते और गेम खेलते हुए ही निकलता है। थोड़े दिनों में फ़ोन में पैसे भी ख़त्म हो जायेंगे। अभी तो घर पर फ़ोन कर सकते हैं। इसके बाद घर पर बात करने के लिए मिस्ड कॉल देनी पड़ेगी। खाली बैठे मन नहीं लगता। इससे अच्छा तो कुछ काम कर लो या फिर घर ही चले जाओ। पर अभी सब ट्रेन बंद है।

इंतज़ार करके थक चुके हैं। कुछ मज़दूरों ने मालिक के घर जाने का फैसला किया। उसने 200 रूपए पकड़ा कर कहा कि बाकि का लॉकडाउन खत्म होने के बाद मिलेगा। कुछ मज़दूरों को गुस्सा आया, कुछ शांत रहे।

"अगर मैं घर गया तो अपने लोगों के साथ रहूँगा। भूख से मरने के बारे सोचना नहीं पड़ेगा। किसी से कुछ मांगने की ज़रुरत नहीं पड़ेगी। अपनी मेहनत से कमाए हुए पैसे ही तो मांग रहा हूँ ना? एक बार ये सब सब ख़त्म हो जाये तो मैं घर लौट जाऊंगा, फिर नहीं आऊंगा यहाँ।"

बिल्डिंग बनाने के बाद, मज़दूर का उसके साथ कोई रिश्ता बाकि नहीं रहता। मज़दूर एक किनारे पर रहते हैं। आज शहर में कितनी ही इमारतें और घर अधूरे बने खड़े हैं, सुनसान, अपने कारीगर के इंतज़ार में। ये आधी बनी इमारतें और घर बार-बार याद दिलाते रहेंगे इस बड़े से शहर के झूठे सपने।

गुमशुदा

मेरा नाम सुरेंद्र यादव है। उम्र 45 साल। मैंने सफ़ेद शर्ट पहनी हैं, गले में एक नीले रंग का तावीज़। कद 5 फुट 6 इंच है, रंग गेहुआ। मैं पांच महीने पहले बैंगलोर आया था। अपने भाई के साथ मेट्रो बनाने के लिए। मैं बनेरघट्टा लाइन पर काम कर रहा था। 20 मार्च को शाम 8 बजे मैं गुमशुदा हुआ। काम से लौटते वक़्त लेबर कॉलोनी का रास्ता भूल गया। मेरा भाई भी मुझे तक पहुँचने की कोशिश कर रहा है। मेरे पास मोबाइल फ़ोन नहीं है। मेरे गुमशुदा होने की शिकायत दर्ज करी गयी है। अभी तक मेरी कोई खबर नहीं है। घर पर सब बहुत परेशान हैं। अचानक से सड़क पर कोई नहीं है, गाड़ियों की आवाज़ तक नहीं। सिर्फ गली के कुत्ते, बहुत ढ़ेर सारे। शहर के लोग कहाँ गायब हो गए? अगर मैं आपको कहीं मिलूं तो इस नंबर पर बता दीजियेगा- 9880755875.

ये एक मज़दूर के गुमशुदा होने की सच्ची खबर है। हुलिमावु थाने पर उसके गुमशुदा होने की शिकायत दर्ज की गयी है। एक शहर में कई मज़दूर गुमशुदा होते हैं, किसी की शिकायत लिखी जाती है तो किसी के गायब होने का सच कहीं दर्ज नहीं होता। वो अभी भी खुद के मिलने के इंतज़ार में हैं, उनको परिवारों को उनका आज भी इंतज़ार है।

चैन की नींद

आज सुबह से उसके सर में दर्द है। रात फिर नींद नहीं आयी। सुबह देर से उठी, दो कप चाय बनायी कम दूध की। उसने देखा उसका आदमी बाहर बैठकर सड़क को ताक रहा था। कोई जल्दी नहीं है। दिनभर क्या करेंगे, कुछ पता नहीं। उसको आदत नहीं है ऐसे दिन की। खाना बनाने की कोई जल्दी नहीं। इंतज़ार कर रही है कि आज शायद फिर पैकेट का खाना मिल जाये तो घर का राशन कुछ बच जायेगा।

वो पांच साल पहले बैंगलोर आयी थी अपने दो बच्चों के साथ। उसका आदमी पहले से यहाँ इमारत बनाने का काम करता था। वो पहली बार गांव छोड़कर ट्रेन में बैठ कर इतने बड़े शहर आयी थी। किराये के मकान में रहना, अपना घर खुद संभालना, गांव के भरे-पूरे परिवार से अलग चार लोग अपनी रोटी खुद बनाना, नयी भाषा, नये लोग, सब कुछ नया था उसके लिये।
सुबह के 11 बज गए पर बच्चे अभी तक सोकर नहीं उठे। उसने अपने बड़े लड़के को उठाकर बोला, चौराहे तक देख कर आ अगर खाने का पैकेट बाँटने वाले आये हैं तो। इतने में वो रसोई में जाकर देखती है कि कितना राशन बाकि है। अगले तीन दिन मुश्किल से ही चलेगा। आजकल वो दिन में दो ही बार खाना खाते हैं, ज़्यादातर बस दाल और रोटी।

बैंगलोर आकर पहले उसने एक कपड़ा फैक्टरी में काम शुरू किया था। कुछ साल बाद वो बंद हो गयी और अब वो पास के ही एक घर में सुबह से शाम तक सफाई का, खाना बनाने का काम करती है। उसे काम करना पसंद है।

काम के बाद नींद अच्छी आती है। और फिर काम नहीं करेंगे तो खाएंगे क्या?

उसके लिए दोपहर काटना सबसे ज़्यादा मुश्किल होता है। उसने देखा घर पर सब फिर सो रहे हैं। और वो आँखें खोले बैठी रहती है। दोपहर को इस एक कमरे के घर की दीवारें उसे काटने को दौड़ती हैं। कमरा और छोटा लगने लगता है। जब उसका जी मचलता है तो शंकर जी के भजन गन-गुना लेती है। उसे मोबाइल चलाना नहीं आता।

शाम 6 बजे पता चला कि पैकेट बाँटने वाले आये हैं। वो दौड़ कर बाहर गयी। आज उन्होंने कहा थाली ले आओ और लाइन में लग जाओ। उसे एकदम से बहुत बुरा लगा, आज क्या दिन देखना पड़ रहा है। वो चुप-चाप वापिस चली गयी और बच्चों को लाइन में लगे रहने दिया। उस रात उसने कुछ नहीं खाया। वो जिस घर में काम करती है वहां से पैसे नहीं मिले। पर वो किस मुंह से पैसे मांगे। उसने सुबह ही सफाई कर्मचारी को सड़क साफ़ करते हुए देखा था। कुछ लोग हैं जो अभी भी काम कर रहे हैं। फिर वो बिना काम किये कैसे पैसे मांग सकती है। पर आज शाम बच्चों को लाइन में खड़ा देख उसने फैसला कर लिया है कि वो कल सुबह मैडम को फ़ोन करेगी।
रात के दस बजे, उसका आदमी फिर से बाहर बैठ कर सड़क ताक रहा है। बच्चे मोबाइल पर खेल रहे हैं। उसने पड़ोसी के मोबाइल पर देखा था कि किस तरह मज़दूर लोग पैदल ही गांव की तरफ निकल पड़े थे। आगरा में उसका देवर भी पैदल ही चल दिया था। ये सब देख कर उसका और भी खाने का मन नहीं करता, पेट में एक गांठ की तरह दर्द बना रहता है।
आधी रात वो जाकर लेटी पर नींद का कोई नामोनिशान नहीं। उसने अपने आदमी की तरफ देखा, उसे इतना शांत उसने पहले कभी नहीं देखा। आँखें बंद करते ही उसे याद आया कैसे दिन भर के काम के बाद वो थक कर लेटते ही सो जाया करती थी। सुबह घर का काम, फिर काम पर जाना, शाम को फिर बच्चे और घर का काम, फुर्सत ही नहीं थी। पर चैन था, सुकून था। काम था, नींद थी।

कानून के अनुसार

गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 29 मार्च, 2020 को जारी किया गया

* लॉकडाउन की वजह से फंसे मज़दूरों के लिए सरकार को रहने की जगह, राशन और आम ज़रूरतों की व्यवस्था करनी होगी। ये प्रवासी मज़दूरों के लिए भी करना होगा जो अपने घरों से दूर शहरों में अटके हुए हैं।
* लॉकडाउन के दौरान जितने भी दिन काम बंद रहा है, सभी मालिक, उद्योग, फैक्ट्री और ठेकेदार को मज़दूरों की पूरी तनख्वाह सही तारीख पर बिना कोई पैसे काटे देनी होगी।
* इस समय जिन मज़दूरों के पास रहने की जगह नहीं है, सरकार को उन सभी के रहने का इंतज़ाम करना होगा ज़रूरी स्वास्थ्य इंतज़ाम के साथ।
* अगर मज़दूर, प्रवासी मज़दूर भी, किराये पर रह रहे हैं तो मकान मालिक उनसे एक महीने का किराया नहीं मांग सकते। अगर इस दौरान मकान मालिक ने किसी को ज़बरदस्ती घर खाली करने पर मजबूर किया तो महामारी रोग अधिनियम के तहत उनपर कानूनी कार्यवाही की जा सकती है।
* मज़दूरों के पास स्वास्थ्य सुरक्षा के साधन होने चाहिए जैसे कि दस्ताने, मास्क और साफ पानी।

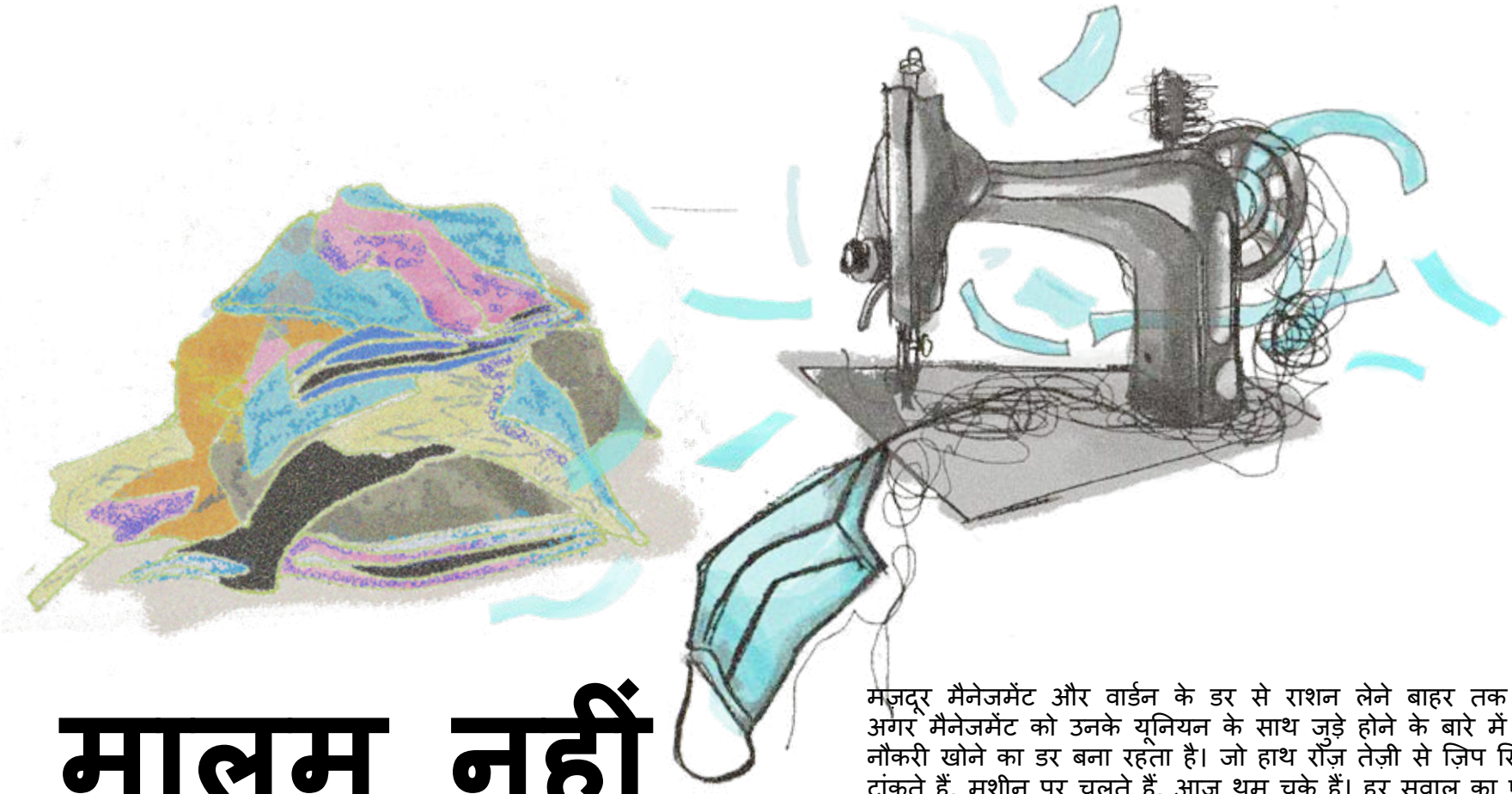

मालूम नहीं

“कहाँ से हो तुम?
“त्रिपुरा।”
“यहाँ क्यों आयी हो?”
“मास्क बनाने के लिये उस घर से कपड़ा लेना है।”
“तुम जैसे लोगों की वजह से ही कोरोना फैलता है। थू।
भाग जाओ यहाँ से वरना...”
“पर मैं सिर्फ कपड़ा लेने आयी थी।”
ये सुनते ही चार आदमी उसके पीछे भागने लगे। दौड़ते-दौड़ते वो सब्ज़ी के ठेले के पीछे छिप गयी।

उस दिन के बाद उसने फिर कभी घर के बाहर कदम नहीं रखा। वो एक कपड़ा फैक्ट्री में काम करती है जो लॉकडाउन के चलते बंद है। ऐसे में यूनियन की मदद से मास्क बनाकर कुछ मदद हो जाती है। इस हादसे के बाद उसे गुस्सा तो बहुत आया पर वो वापिस वहां नहीं गयी, “मेरा इधर कोई नहीं है, कल कुछ हो गया तो मेरी लिए कौन बोलेगा। हम यहाँ काम करके पैसा कमाने आये हैं, इस तरह के झगड़ों में नहीं फंस सकते।”

बैंगलोर की सभी कपड़ा फैक्ट्री में लॉकडाउन के चलते ताले पड़े हैं। गेट पर बस एक पर्चा चिपका है जिसमे फैक्ट्री खुलने की तारीख आगे बढ़ती रहती है। इसके अलावा मज़दूरों के पास कोई जानकारी नहीं है। फैक्ट्री के लैंडलाइन नंबर के अलावा और कोई नंबर नहीं। मज़दूरों से कोई भी सवाल पूछो, सबका जवाब, मालूम नहीं। अप्रैल की तनख्वाह मिलेगी? कंपनी से राशन मिलेगा? कंपनी कब खुलेगी? घर वापिस जाना है? आगे के दिन कैसे कटेंगे? “मालूम नहीं।” इस जानकारी के अभाव में कई तरह की अफवाएं फ़ैल रही हैं, लॉकडाउन के बाद कंपनी 50% मज़दूरों को नौकरी से निकाल देगी, अगर घर चले गए तो नौकरी चली जाएगी, गांव में पंचायत मज़दूरों का रजिस्ट्रेशन कर रही है, उसके बिना कोई फिर कभी गांव वापिस नहीं जा पायेगा। इन सबके चलते मज़दूरों में नौकरी को लेकर एक चिंता बानी हुई है। वहीँ कुछ मज़दूरों ने लॉकडाउन खत्म होते ही घर जाने का मन बना लिया है, “फैक्ट्री में एक साथ कितने लोग काम करते हैं, एक आधा सिला हुआ कपड़ा कितने हाथों से गुज़रता है। ऐसे में बीमारी नहीं फैलेगी क्या? हमें इलाज का पैसा कहाँ से लायेंगे। घर ही जाना अच्छा है।”

इन सबके बीच कंपनी के मैनेजमेंट की तरफ से मज़दूरों को राशन या खाने की कोई मदद नहीं मिली है। सबको मार्च के महीने के पूरे पैसे भी नहीं मिले हैं। यूनियन ने सवाल उठाया की हॉस्टल में रहने वाले मज़दूरों को राशन मिलना ज़रूरी है। कंपनी वादा करके भूल गयी। किसीको राशन नहीं मिला। और जब यूनियन अपनी तरफ से हॉस्टल के बाहर राशन लेकर पहुँची तो कई मज़दूर मैनेजमेंट और वार्डन के डर से राशन लेने बाहर तक नहीं निकले। अगर मैनेजमेंट को उनके यूनियन के साथ जुड़े होने के बारे में पता चला तो नौकरी खोने का डर बना रहता है। जो हाथ रोज़ तेज़ी से ज़िप सिलते हैं, बटन टांकते हैं, मशीन पर चलते हैं, आज थम चुके हैं। हर सवाल का एक ही जवाब, मालूम नहीं।

*ये लेख आधारित है कर्नाटक गारमेंट वर्कर्स यूनियन के साथ जुड़े हुए प्रवासी मज़दूरों के साथ हुई बातचीत पर।

श्रद्धांजलि

चलते चलते

घर पास ही है, कड़ी धूप में आँखों के धोखे की तरह।

उसे दूर तक चलने की आदत है। बस पकड़ने के लिए,अस्पताल जाने के लिए, काम के लिए। कभी-कभी दिमाग को हल्का करने के लिए भी चलने की ज़रुरत पड़ती है।

गर्मी की धूप में एक परिवार ने उसे सड़क के किनारे पड़ा हुआ पाया।

वो अभी भी चल रही है, उसके कान में उसकी माँ की आवाज़ बार-बार गूंज रही है।

उन्होंने उसे उठाने की कोशिश की। उन्होंने आस-पास के बाकि लोग और पुलिस को बुलाया। वायरस के डर से पुलिस ने उसे छूने से भी मना कर दिया। उसके शरीर के इर्द-गिर्द एक भीड़ जमा हो गयी।

वो अपने गांव पहुँच गयी, वो अपने पड़ोसियों से मिल रही है।

उस परिवार के पास जो एकलौता कपड़ा था उन्होंने उसके शरीर पर डाल दिया। एम्बुलेंस आने तक वो उसके पास ही बैठे रहे।

वो अपने घर में है। उसके बच्चे कितने बड़े हो गए ना!

उसकी माँ के पास एक फ़ोन आया। उसको मरा हुआ घोषित किया गया। उसके परिवार के पास उसके अंतिम संस्कार में आने के लिए पैसे नहीं हैं।

वो घर की बनी चाय पी रही है। माँ ने उसकी पसंद की खीर बनायी है।

उसकी मौत अजनबियों के बीच हुई। बाकियों की तरह घर जाने की कोशिश में शहर छोड़ने पर मजबूर।

शाम का समय, वो अपनी पड़ोसिन के साथ गप्पे मार रही है, उसकी शहर की ज़िंदगी के बड़े किस्से हैं उसके पास सुनाने के लिए। हाय वो कमबख़्त ठेकेदार!

अखबार में उसकी मौत के बारे में एक छोटी सी खबर आयी है। उन्हें उसका नाम नहीं पता। सरकार ने मुआवज़ा देने का वादा किया है। उसकी तरह बाकि मज़दूर अभी भी चल रहे हैं।

घर पास ही है, कड़ी धूप में आँखों के धोखे की तरह।

*लॉकडाउन की वजह से शहरों में फंसे प्रवासी मज़दूरों के लिए घर अभी दूर है। ये पहली बार नहीं है जब उन्होंने चलकर ये लम्बा सफर तय किया है। पर शायद ये पहली बार है जब लोगों को उनका ये लम्बा सफर दिख रहा है। उन्होंने फैसला कर लिया है कि अब घर चाहे कितनी ही दूर हो, उनके रस्ते में कोई नहीं आ सकता। वो चलते-चलते कभी तो घर पहुँच ही जायेंगे। ये श्रद्धांजलि उन सभी मज़दूरों को समर्पित है जिन्होंने ट्रैन या बस न मिलने की वजह से पैदल ही घर जाने का फैसला किया।

प्रोजेक्ट 560 आइ एफ ऐ के द्वारा एक पहल है कलाकार, संस्था और आम जनता को प्रोत्साहित करने के लिए कि वो शहर के साथ एक नयी कल्पना और सवालों के साथ काम कर सकें।

हमारा तोहफा कब मिलेगा?

“आपको पता है इस वक़्त सिर्फ हम ही हैं जो बाहर जाकर सड़कों पर काम कर रहे हैं? जब से लॉकडाउन शुरू हुआ है एक दिन की छुट्टी नहीं मिली है। रोज़ सुबह 6.30 से 10.30 तक लगातार काम। वायरस के समय बाहर निकल कर सबका कचरा उठाना, सड़कें साफ़ करना, हिम्मत का काम नहीं है? आप करोगे ये काम?” मीना का पूछना है। शाम को वो अपना मोबाइल फ़ोन बंद कर लेती है क्योंकि उसके दोस्त बार-बार फ़ोन करके परेशान करते हैं कि सरकार से जो ‘तोहफे का वादा’ हुआ था वो मिला कि नहीं। “मोदी या येंडि ने सच में पौराकार्मिका के लिए कोई तोहफे का वादा किया है क्या या ये सब झूटी खबर है? जो भी हो ये खबर वायरस की तरह फ़ैल रही है,” मीना बीड़ा चबाते हुए हँसते हुए बोली।

वो सुबह 4.30 बजे उठती है, 5.30 बजे तक तैयार होकर ऑटो स्टैंड के पास अपने दोस्तों का इंतज़ार करती है साथ में काम पर जाने के लिए। “रोज़ अपनी हाज़िरी लगाने के लिए वो पंच करने का नाटक तो बंद हो गया। अब हम सब 1 मीटर की दूरी पर मास्क और दस्तानों के साथ अपना फोटो ले लेते हैं। वही काफी है सरकार को यकीन दिलाने के लिए कि हम काम कर रहे हैं।” “ये पढ़े-लिखे लोग बेफकूफ हैं क्या? वो कूड़ा अलग-अलग करना कब सीखेंगे?” इस समय में भी पौराकार्मिका को कचरे में से थूक, बलगम से भरे टिश्यू पेपर, सैनिटरी पैड़ और मेडिकल कचरे को अलग करना पड़ता है। गली के कोने में कचरे का ढ़ेर अभी भी लगता है। लॉकडाउन के समय तो कचरे से भरा पैकेट चुपके से फेकना और भी आसान है। “पता है हम लोग कहाँ रहते हैं? अगर हम में से किसी एक को भी वायरस हुआ तो पूरी बस्ती को वायरस होते देर नहीं लगेगी। जो बड़े लोग टिश्यू पेपर इस्तेमाल करते हैं मुमकिन है सबसे पहले उनसे हमे ही ये वायरस फैलेगा। ये पढ़े-लिखे लोग हमेशा अपने बारे में ही सोचते हैं क्या? अब हमारी बारी है, उनको छुआछूत महसूस कराने की। हम खुला बोलते हैं उनको, अगर कचरा अलग-अलग नहीं किया तो हम हाथ नहीं लगाएंगे। आप नियम का पालन करो।”

पौराकार्मिका के लिए सड़क पर बस नहीं रूकती, ऑटो का किराया दुगना हो गया है। 5-6 लोगों को एक ही ऑटो में घुसकर जाना पड़ता है। लॉकडाउन के बाद 8 घंटे के काम का दिन 4 घंटे का ही रह गया है। “जब बस-ऑटो नहीं मिलता तो पैदल चलकर ही आना पड़ता है। पानी नहीं पीते वरना टॉयलेट जाना पड़ेगा। काम की जगह हमारे घर से दूर है। 4 घंटे के बाद हम पूरी तरह थक चुके होते हैं। चाय की दुकानें भी बंद हैं। हम घर पहुँचकर ही टॉयलेट जा सकते हैं और दिन का पहला खाना दोपहर को 2-3 बजे खाने को मिलता है।”

बैंगलोर में कई इलाके हॉटस्पॉट में आते हैं जहाँ से लोग बाहर नहीं जा सकते और बाहर से कोई अंदर नहीं आ सकता लेकिन पौराकार्मिका लगातार इन इलाकों में काम कर रही हैं।

राशन की दुकान में सब चीज़ों के पैसे बढ़ गए हैं लेकिन तनख्वाह उतनी ही है। “दूध, गैस, सब्ज़ी, दाल और चावल। बच्चों को मुश्किल से ही खिला पा रहे हैं। लॉकडाउन में बच्चे भी खाली बैठे हैं, चिढ़चिढ़े हो गए हैं। पहले रीसायकल होने वाले कचरे को बेचकर थोड़ा पैसा मिल जाता था जिससे छोटे-मोटे खर्चे निकल जाते थे। लॉकडाउन के दौरान ये पैसा भी बंद हो गया। फिर घर का किराया देना है और स्कूल भी जल्दी खुल जायेंगे। फीस देनी है, जूते, मोज़े, यूनिफार्म खरीदनी है। आने वाले दिनों में क्या होगा पता नहीं, फिलहाल तो एक-एक दिन ही लेकर चल रहे हैं।”

कुछ समय पहले 30 साल से ज़्यादा काम कर रहे पौराकार्मिका को काम से निकाल दिया गया था वो भी बिना पेंशन या किसी और फायदे के। “आजकल दूसरी जाति के लोग हमारी नौकरी लेते जा रहे हैं। पहले हमारे बच्चों को नौकरी मिलनी चाहिए वरना हमारा परिवार कैसे चलेगा?” मुनियप्पा का पूछना है जो पिछले 30 साल से कचरा इकट्ठा करने का काम करता है।

जो लोग कचरे और गंदे नाले की बू के साथ काम करते हैं उनके लिए शराब एक आदत बन गयी है। अब लॉकडाउन के दौरान शराब की दुकानें बंद होने से उन्हें दिक्कत हो रही है। पर महिलाएं बड़ी खुश हैं। “वायरस से ये सबसे अच्छी बात हुई है। शराब के बिना अब आदमी लोग कैसे काम कर रहे हैं? ये सब तो बहाना है। जब तक इन लोगों को शराब के बिना जीने की आदत नहीं हो जाती तब तक शराब की दुकानें बंद ही रहनी चाहिए। गुस्से और मार-पिटाई से तो छुटकारा मिला। रात को नींद तो अच्छी आती है।”

पौराकार्मिका की इस वक़्त शहर के लोगों से एक ही मांग है कि वो अपने घरों के अंदर ही रहें। “बाहर आकर शहर की हवा में बीमारी फैलाने की ज़रूरत नहीं है।” और प्रिय सरकार से यही कहना है, “अगर हमारी तनख्वाह समय पर नहीं मिली तो हम सड़कें साफ नहीं करेंगे। और हमारा तोहफा मत भूलना,”

मीना हँसते हुए बोली अपने बीड़े में चूना लगाते हुए।